International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 17-08-2021, Accepted: 02-09-2021, Published: 18-09-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 37-41

छायावाद की पृष्ठभूमि और रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास'

डॉ. आभा शर्मा
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

आचार्य रामचंद्र शुक्ल विधेयवादी दृष्टि के साहित्येतिहासकार हैं। उन्होंने 1929 ई. में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा। इस साहित्येतिहास ग्रंथ को हिंदी साहित्य का पहला प्रौढ़ साहित्येतिहास ग्रंथ भी कहा जाता है क्योंकि इसमें न केवल काल विभाजन और नामकरण की सुसंगत एवं स्पष्ट व्यवस्था थी बल्कि शुक्ल जी द्वारा साहित्येतिहास की सामग्री के मूल्यांकन एवं विश्लेषण हेतु व्यापक दृष्टिकोण को भी अपनाया गया था। शुक्ल जी के साहित्येतिहास लेखन के प्रयास की सीमाओं के अंतर्गत अन्य बिंदुओं के साथ छायावाद को भी शामिल किया जाता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि छायावाद की सर्वप्रथम विधिवत व्याख्या आचार्य शुक्ल ने ही प्रारम्भ की थी। उनके समय तक छायावाद नामकरण तो प्रचलित हो चुका था किंतु उसके अर्थ को लेकर एक अनिश्चयात्मकता बनी हुई थी। शुक्ल जी ने अपने साहित्येतिहास में इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है इसके अंतर्गत उन्होंने जहां एक तरफ छायावाद को अनुकरण के संदर्भ में फैंटसमाटा आंदोलन तथा बंगला काव्य के छायाभास/रहस्यवाद से जोड़ा है वहीं दूसरी तरफ इसकी व्याख्या अभिव्यक्ति शैली की दृष्टि से प्रतीकवाद के माध्यम से करते हैं। आगे चलकर इसे ही आधार बनाकर कई आलोचकों ने छायावाद की विस्तृत व्याख्या की।

मूल शब्द: छायावाद, साहित्येतिहास, स्वछंदतावाद, रीतिकाल, रहस्यवाद

प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास कविता के साथ-साथ गद्य की विभिन्न विधाओं में भी हुआ है. इसी समय गद्य के साथ-साथ खड़ी बोली हिंदी का विकास भी हुआ और जो गद्य सहित पद्य का भी माध्यम बनी. नाटक, निबंध, कहानी, उपन्यास, समालोचना जैसी प्रमुख गद्य विधाओं के विकास के साथ ही आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्तांत, रेखाचित्र तथा संस्मरण आदि का अन्य गद्य विधाओं का विकास भी आधुनिकक़ालीन साहित्य की ही देन है. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को कुल चार कालों में विभाजित किया है. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के आधे भाग में तीन कालों का वर्णन है और लगभग आधे ही भाग में आधुनिक काल के साहित्य का विवेचन है.

कहने का आशय है कि आधुनिक क़ालीन साहित्य परिमाण और विविधता में इतना व्यापक है कि हिंदी साहित्य के इतिहास के लगभग आधे पृष्ठों में उसको स्थान दिया गया है. शुक्ल जी ने आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथ में छायावाद की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए लिखा है, "पंडितों की बंधी प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़

जनता के बीच एक स्वच्छंद और प्राकृतिक काव्यधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है - ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल से स्थिर चली आती हुई पंडितों की साहित्य भाषा के साथ-साथ लोकभाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है. “जब पंडितों की काव्यधारा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हूई कि लोकभाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तब शिष्ट समुदाय लोकभाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परंपरा में नया जीवन डालता है. प्राकृत के पुराने रूपों से लदी अपभ्रंश जब लद्धड़ होने लगी तब शिष्ट काव्य प्रचलित देशी भाषाओं से शक्ति प्राप्त करके ही आगे बढ़ सका. यही प्राकृतिक नियम काव्य के स्वरूप के संबंध में भी अटल समझना चाहिए. जब-जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हूई प्राकृतिक भावधारा से जीवनत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा.”1(रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 326).

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य; उसका उद्भव और विकास नामक अपनी पुस्तक में सन् 1920 से पहले की कविता को नवीन युग की कविता कहा है और इस काल को नवीन युग ले आने वाला काल। “इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने ‘छायावाद’ नाम दे दिया है. यह शब्द बिलकुल नया है. यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्यों को बंगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है.”2 (हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उसका उद्भव और विकास, 284). वस्तुतः द्विवेदी जी संभवत: रामचंद्र शुक्ल के उस विचार की ओर संकेत करते दिखाई दे रहे हैं जिसके अनुसार शुक्ल जी ने छायावाद को बंगला साहित्य से प्रभावित होने की ओर संकेत किया है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ‘छायावाद’ की व्याख्या करते हुए लिखा था कि “छायावाद कविता की पहली दौड़ तो वंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हूई.” इसी संदर्भ में वे आगे कहते हैं की “इस भावधारा की अभिव्यंजन प्रणालियां वे ही होती हैं जिन पर जनता का हृदय इस जीवन में अपने भाव स्वभावत ढलता आता है. हमारी भावप्रवर्तिनी शक्ति का असली भंडार इसी स्वाभाविक भावधारा के भीतर निहित समझना चाहिए. जब पंडितों की काव्यधारा इस स्वाभाविक भावधारा से विच्छिन्न पड़कर रूढ़ हो जाती है तब वह कृत्रिम होने लगती है और उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है.” 3(रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 326).

शुक्ल जी ने साहित्य की जिस पंडिताऊ प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है वह उत्तर मध्यकाल से ही लेखन में चली आ रही थी। जो रीतिबद्ध काव्यधारा से सर्वाधिक प्रभावित थी. अभी तक कविता का माध्यम इसी कारण ब्रजभाषा बना हूआ था. ब्रजभाषा में पुरानी परिपाटी की रचनाएँ होती चली आ रही थीं. आर्थिक और राजनीतिक कारणों से समाज में तेज़ी से हो रहे परिवर्तनों को पुरानी परिपाटी की कविता अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से समर्थ नहीं हो पा रही थी. गद्य भी कमज़ोर था. अतः देश, समाज और उसकी विषय-वस्तु के अनुरूप भाषा का रूप भी बदला. साथ ही काव्य का स्वरूप भी बदलता गया. “ऐसी परिस्थिति में इसी भावधारा की ओर दृष्टि ले जाने की आवश्यकता होती है. दृष्टि ले जाने का अभिप्राय है उस स्वाभाविक भावधारा के ढलाव की नाना अंतरभूमियों को परखकर शिष्ट काव्य के स्वरूप का पुनर्विधान करना. यह पुनर्विधान सामंजस्य के रूप में हो. अन्तरप्रतिक्रिया रूप में नहीं, जो विपरीतता की हद तक जा पहूँचती है. इस प्रकार के परिवर्तन को ही अनुभूति की सच्ची नैसर्गिक स्वच्छंदता कहना चाहिए क्योंकि वह मूल्य प्राकृतिक आधार पर होता है.”4(रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 327).

स्वच्छंदतावाद के बारे में आलोचकों द्वारा कहा गया है कि द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध स्वच्छंदतावाद का उदय हुआ. यह भी कहा गया कि इसके सूत्र पश्चिम से जुड़ते हैं. शुक्ल जी ने इस तरफ़ संकेत करते हुए लिखा है कि “इंग्लैंड के जिस स्वच्छंदतावाद का इधर हिन्दी में भी बराबर नाम लिया जाने लगा है उसके मूल प्राकृतिक आधार का स्पष्ट आभास रहा. पीछे के कवियों की व्यक्तिगत, विधागत, और बुद्धिगत प्रवृत्तियों और विशेषताओं के जैसे-रहस्यात्मकता, दार्शनिकता, स्वातंत्रयभावना, कलाकार आदि के अधिक प्रदर्शन से वह कुछ ढक-सा गया. काव्य को पाण्डित्य की विदेशी रूढ़ियों से मुक्त और स्वच्छंद काउपर ने किया था, पर स्वच्छंद होकर जनता के हृदय में संचरण करने की शक्ति वह कहाँ से प्राप्त करे, यह स्कॉटलैंड के किसानी झोपड़े में रहने वाले कवि रॉबर्ट बर्न ने किया था. उसने अपने देश की परंपरागत प्रसिद्ध गीतों की मार्मिकता परखकर देशभाषा में रचनाएँ कीं. जिन्होंने वहाँ के सारे जनसमाज में अपना घर किया.”(रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 327). यह भी कहा गया है कि जैसी परिस्थितियां स्वच्छंदतावाद के समय यूरोप में थी वैसी ही स्थितियाँ हमारे यहाँ भी थीं. रीतिकालीन कविता के प्रभाव के बारे में यह बात कही गयी है. “जिस परिस्थिति में अंग्रेज़ी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का विकास हुआ उसे भी देख कर यही समझ लेना चाहिए कि रीतिकाल के अंत में, या भारतेंदुकाल के अंत में हिन्दी काव्य की जो परिस्थिति थी, वह कहाँ तक इंग्लैंड की परिस्थितियों के अनुरूप थी. सारे यूरोप में बहुत दिनों तक पंडितों और विद्वानों के लिखने-पढ़ने की भाषा लैटिन (प्राचीन रोमियों की भाषा) रही. फ्रांसीसियों के प्रभाव से इंग्लैंड की काव्यरचना भी लैटिन की प्राचीन रूढ़ियों से जकड़ी जाने लगी. उस भाषा के कवियों की सारी पद्धतियों का अनुसरण होने लगा. बँधी हुई अलंकृत पदावली वस्तु-वर्णन की रूढ़ियाँ, छन्दों की व्यवस्था सब ज्यों की त्यों रखी जाने लगी. इस प्रकार अंग्रेज़ी काव्य, विदेशी काव्य और साहित्य की रूढ़ियों से इतना आछन्न हो गया कि वह देश की परंपरागत स्वाभाविक भावधारा से विच्छिन्न सा हो गया.” (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 328). वस्तुतः तत्कालीन परिवेश में तेज़ी से आ रहे बदलाव के कारण पुराना धीरे-धीरे छूटने लगा और नया सामने आने लगा. परिवर्तित परिवेश से स्वयं को कटा हुआ अनुभव करने के बाद कवि विगत में लौटने लगा. अपनी इच्छाओं में जीने लगा. स्वयं के संतोष के लिए अपना काल्पनिक संसार भी गढ़ने लगा. इस प्रक्रिया में उसको सबसे ज़्यादा समर्थन प्रकृति और विगत ने दिया. परिणामस्वरूप ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों के साथ-साथ प्रकृति-चित्रण की अद्भुत रचनाएँ इस दौर में बहुत लिखी गयीं. पाश्चात्य साहित्य में ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और इसी तरह लगभग पूरे भारतीय साहित्य में भी. पर इस प्रवृत्ति की नक़ल भी बहुत हुई, जिसकी ओर हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी संकेत लिया है. ‘उन कविताओं का स्वरूप बहुत कुछ अंग्रेजी वाक्य-खण्डों के अनुवाद द्वारा भर गया. कुछ रचनाकार विशेषकर अंग्रेजी काव्यों से परिचित हिंदी कवि सीधे अंग्रेजी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह-जगह अपनी रचनाओं में देने लगे’.

ऐसा भी कहा गया है कि हरिश्चंद्र के सहयोगियों में काव्यधारा को नए नए विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गई और पद्य के ढांचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता के दर्शन होने चाहिए थे वैसे न हुए. साहित्य पुरानी चली आती हुई पद्धति पर ही चलता रहा. वस्तुतः “इस प्रकार की स्वच्छंदता का आभास पहले पहल पंडित श्रीधर पाठक ने ही दिया. उन्होंने प्रकृति के रूढ़िबद्ध रुपों तक ही न रह कर अपनी आँखों से भी उसके रूपों को देखा.

'गुनवंत हेमंत' में वे गांवों में उपजने वाली मूली, मटर, ऐसी वस्तुओं को भी प्रेम से सामने लाए जो परंपरागत ऋतु वर्णनों के भीतर नहीं दिखाई पड़ती थी. इसके लिए उन्हें पंडित माधव प्रसाद मिश्र की बौछार भी सहनी पड़ी थी.

उन्होंने खड़ी बोली पद्य के लिए सुंदर लय और चढ़ाव उतार के कई नए ढांचे भी निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि छंदों का सुंदर लय और यार मेरा यही मतलब हैसे पढ़ना एक बात है राग रागनी गाना दूसरी बात ख़याल यह लम्हें क़िले पर जैसे 'एकांतवासी योगी' लिखा गया. वैसे ही सुथरे साइयों सधुक्कड़ी ढंग पर 'जगत-सचाई सार' जिसमें कहा गया है कि 'जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा! इसका भेद'"5 (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 330).

भारतेंदु को हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना का जनक कहा जाता है. हालाँकि उन्होंने गद्य और पद्य के लिए अलग-अलग भाषा माध्यम को अपनाया. पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करके हिंदी का प्रचार-प्रसार किया. इस तरह हिंदी को नयी चल में ढाला. लेकिन काव्य-परम्परा की पुरानी रूढ़ियों के पालन के कारण शुक्ल जी ने लिखा है कि भारतेंदु के समय में परम्परागत पद्धति नहीं बदली. "कुछ लोक भावनाओं के समावेश के अतिरिक्त काव्य की परंपरा पद्धति में किसी प्रकार का परिवर्तन भारतेंदु काल में न हूआ. भाषा ब्रज भाषा ही रहने दी गई और उसकी अभिव्यंजना पद्धति का कुछ विशेष प्रसार न हूआ. काव्य को बँधी हूई प्रणालियों से बाहर निकालकर जगत और जीवन के विविध पक्षों की मार्मिकता झलकाने वाली वाली धाराओं में प्रवाहित करने की प्रवृति भी न दिखाई पड़ी."6 (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 348). छायवाद की पृष्ठभूमि के संदर्भ में उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि भारतेंदु के बाद हिंदी का आधुनिक साहित्य नूतन विषयों ओ लेकर नहीं चला. शुक्ल जी लिखते हैं कि "तृतीय उत्थान में आकर खड़ी बोली के भीतर काव्यत्व का अच्छा स्फुरण हूआ. जिस देश प्रेम को लेकर काव्य की नूतन धारा भारतेंदु काल में चली थी वह उत्तरोत्तर प्रबल और व्यापक रूप धारण करता आया. शासन की अव्यवस्था और अशांति के उपरांत अंग्रेज़ों के शांतिमय और रक्षापूर्ण शासन के प्रति कृतज्ञता का भाव भारतेंदु काल में बना हूआ था. इससे उस समय की देशभक्ति संबंधी कविताओं में राजभक्ति का स्वर भी प्रायः मिला पाया जाता है. देश की दुख:दशा का प्रधान कारण राजनैतिक समझते हूए भी उस दुख:दशा में उद्धार के लिए कवि लोग दयामय भगवान को ही पुकारते मिलते हैं." (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, 349). शुक्ल जी की मान्यताओं को ध्यान में रखकर उनके बारे में कहा गया है की उन्होंने 'छायावाद' को सीमित अर्थों में लिया है. कुल मिलाकार तो वे छायावाद की आलोचना ही करते नजर आते हैं, भले ही छायावाद के चारों कवियों के बारे में लिखते हूए वे उनकी प्रशंसा ही कर रहे हों. चारों में महादेवी वर्मा को अवश्य छायावाद की कमज़ोर कड़ी मानते हैं.

अंततः द्विवेदी जी के अनुसार कहा जा सकता है कि साहित्य की नयी मान्यताओं के साथ-साथ नवीन विषयों, कल्पना, चिंतन, अनुभूति, नवीन प्रगीत मुक्तकों आदि की दृष्टि से छायावादी कविता नवीनता लिए हुए है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 326
2. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उसका उद्भव और विकास, पृ. 284
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ. 326
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ. 327

5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 330
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 348